
इकाई 19 कार्य-कारणवाद

इकाई की रूपरेखा

- 19.0 उद्देश्य
- 19.1 प्रस्तावना
- 19.2 स्वभाववाद (चार्वाक मत)
- 19.3 प्रतीत्यसमुत्पाद (बौद्ध मत)
- 19.4 सत्कार्यवाद (सांख्य-योग मत)
- 19.5 असत्कार्यवाद (न्याय-वैशेषिक मत)
- 19.6 परिणामवाद एवं विवर्तवाद (वेदान्त मत)
- 19.7 सारांश
- 19.8 शब्दावली
- 19.9 उपयोगी पुस्तकें
- 19.10 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

19.0 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों ! आप बी. ए. ऑनर्स कार्यक्रम के अन्तर्गत भारतीय दर्शन के मूल सिद्धान्त (BSKG -172) पाठ्यक्रम के खण्ड 04 – 'भारतीय दर्शन की समस्याएँ' की इकाई सं० 19 'कार्य-कारणवाद' का अध्ययन करने जा रहें हैं जिसके अध्ययन से आप –

- कार्य-कारणवाद किसे कहते हैं? इसका ज्ञान प्राप्त करेंगे ।
- भारतीय दर्शन के कार्य-कारणवाद के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करेंगे ।
- स्वभाववाद एवं प्रतीत्यसमुत्पाद का अवबोध कर पाएंगे ।
- सत्कार्यवाद की सिद्धि हेतु दिए गए तर्कों की समीक्षा करेंगे ।
- असत्कार्यवाद क्या है ? समवायिकारण एवं असमवायिकारण में अन्तर को समझ पाएंगे ।
- माया की द्विविध शक्तियों का बोध करते हुए विवर्तवाद का व्यापक अध्ययन करेंगे ।

19.1 प्रस्तावना

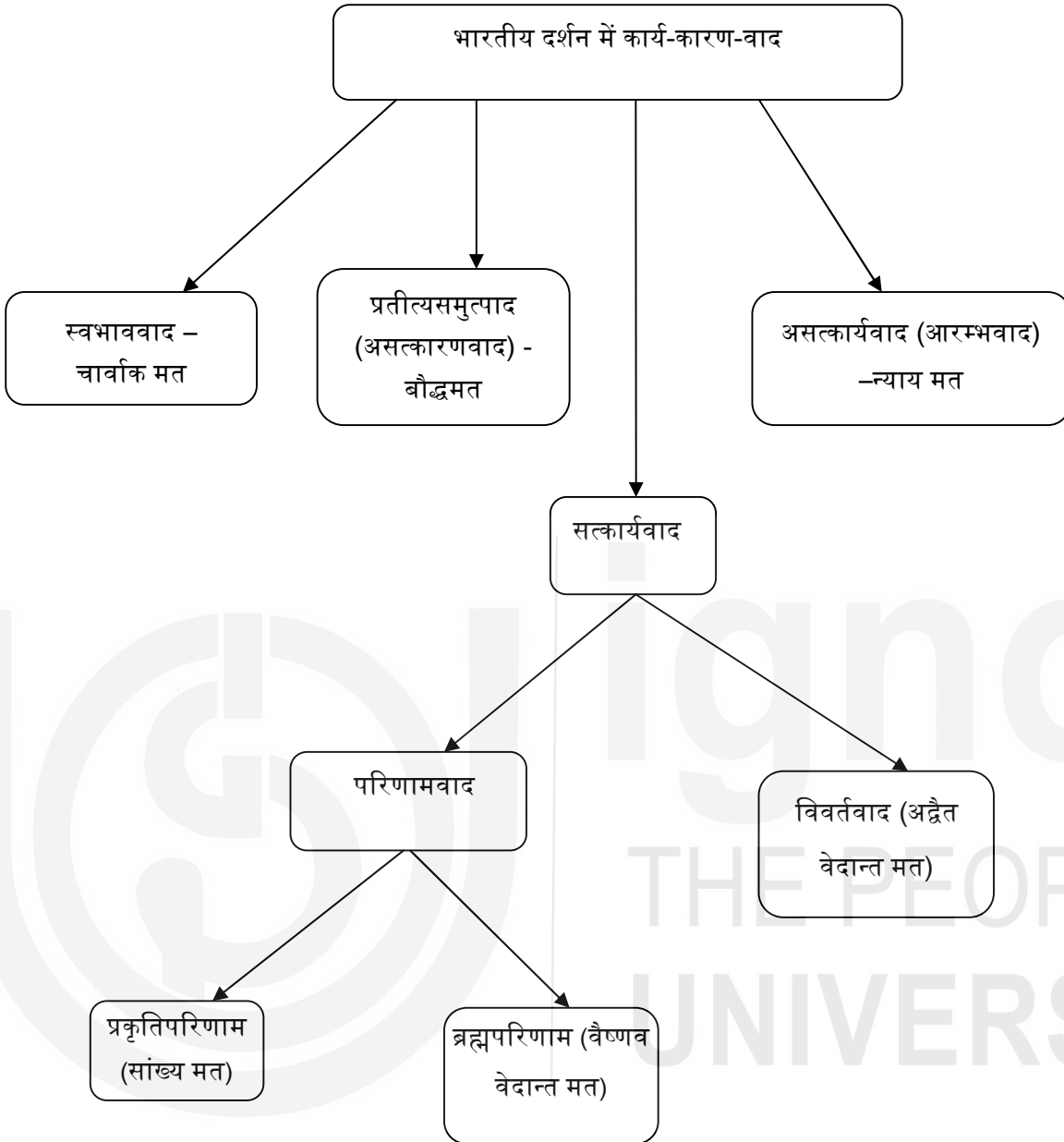
जब कोई तत्त्व या प्रक्रिया किसी दूसरे तत्त्व या प्रक्रिया को उत्पन्न करता है तो इसे कारणता (causality या causation) कहते हैं । जो तत्त्व उत्पन्न होता है उसे 'कार्य या प्रभाव' कहते हैं तथा उस कार्य या प्रभाव को उत्पन्न करने वाले तत्त्व या प्रक्रिया को 'कारण' कहा जाता है । कारणता को 'कार्यकारण' (cause and effect) भी कहते हैं। यह

जगत् परमार्थ-दृष्टि से सत्य हो या मिथ्या किन्तु इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि इसका सबको अनुभव होता है। अतः सभी दार्शनिकों के लिए यह आवश्यक है कि वे इस प्रत्यक्ष जगत् की तर्कसंगत व्याख्या करें। परिवर्तन अर्थात् प्रति क्षण किसी वस्तु की उत्पत्ति और किसी का विनाश, इस जगत् का अनुभव-सिद्ध स्वभाव है। इसलिए यह प्रश्न उठता है कि इस जगत् में होने वाला उक्त परिवर्तन कैसे होता है? दूसरे शब्दों में; यह परिवर्तन आकस्मिक है, बिना किसी कारण के हो जाता है या इसका कुछ न कुछ कारण है? चिरकाल से इस प्रश्न के विषय में विचार-विमर्श होते आ रहे हैं। विभिन्न विचारक अपने-अपने दृष्टिकोण से समाधान प्रस्तुत करते रहे हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में (1.2) में इस प्रश्न के समाधान के रूप में 'कालवाद', 'स्वभाववाद', 'नियतिवाद', 'यदृच्छावाद', 'भूतवाद', 'पुरुषवाद' का उल्लेख मिलता है। न्यायसूत्र में गौतम ने भी अनेक वादों का निर्देश किया है।

इस संसार में दिखाई देने वाले कारण-कार्य-सम्बन्ध को आधार बनाकर प्रत्येक दर्शन अपनी तत्त्वमीमांसा के अन्तर्गत कारणवाद की विवेचना अवश्य करता है। कार्य की सत्ता ही उसके कारण की सूचक होती है। यह संसार और इसके समस्त पदार्थ कार्य हैं और वे अपने किसी न किसी कारण से उत्पन्न हैं। जगत् के मूल तत्त्व की खोज के अन्तर्गत दर्शन इस संसार में दिखाई देने वाले कार्य-कारण-सम्बन्ध की मीमांसा करते हैं और उसके आधार पर जगत् के मूल कारण का स्वरूप निश्चित करते हैं। भारतीय दर्शन में मान्य तत्त्वों के स्वरूप के आधार पर कारणवाद का स्वरूप आश्रित होता है। बौद्ध दर्शन प्रतिक्षण परिवर्तनशील तत्त्व को मानता है और कारण के नाश से कार्य की उत्पत्ति की बात करता है, इसलिए इनका सिद्धान्त असत्कारणवाद कहलाता है। न्यायदर्शन कार्य को एक सर्वथा नवीन उत्पत्ति मानता है। वह कार्य का कारण में अभाव मानता है। न्याय का कारणवादी मत असत्कार्यवाद कहलाता है। जबकि सांख्य दर्शन कार्य को कारण में पूर्वतः विद्यमान मानकर सत्कार्यवाद की स्थापना करता है। जैसे सांख्य दर्शन के अनुसार संसार में दिखाई देने वाले सभी कार्यों व उनके कारणों में निश्चित रूप से पाया जाने वाला गुण है- सुख, दुःख और मोह/उदासीनता। इसलिए उन सभी के मूलभूत कारण में भी इन गुणों का होना आवश्यक है और ये सुख, दुःख, मोह त्रिगुण सत्त्व, रजस् व तमस् के धर्म हैं और इन तीन गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है जो सांख्य दर्शन के अनुसार जगत् का मूल कारण है।

दार्शनिक सम्प्रदायों में भी कार्य-कारण-सिद्धान्त की एकरूपता नहीं है। कार्य-कारण का सम्बन्ध क्या है? क्या कार्य, कारण से पूर्ण रूप में अभिन्न है या दोनों परस्पर भिन्न हैं? कार्य किसी भावात्मक कारण से उत्पन्न होता है या अभावात्मक कारण से। कार्य की उत्पत्ति की प्रक्रिया क्या है? इत्यादि प्रश्नों के समाधान में मतभेद के आधार पर दार्शनिकों के कार्य-कारण-सिद्धान्त में विभिन्न रूपता आ गई है जो मुख्य रूप से निम्नानुसार हैं –

1. स्वभाववाद – चार्वाक मत
2. प्रतीत्यसमुत्पाद – बौद्ध मत
3. सत्कार्यवाद – सांख्य-योग मत
4. असत्कार्यवाद – न्याय-वैशेषिक मत



19.2 स्वभाववाद (चार्वाक मत)

यह चार्वाक दर्शन का सिद्धान्त है। जिसके अनुसार वस्तु का निर्माण होना स्वभाव है अर्थात् स्वयमेव ही वस्तु प्रकट होती है उसका कोई कारण नहीं होता। स्वभाववाद या यदृच्छवाद को चार्वाक प्रणाली द्वारा समर्थित किया गया है। स्वभाववाद की चर्चा सर्वदर्शनसंग्रह में भी की गई है, जहाँ कहा गया है कि दुनिया की घटना अनायास ही वस्तुओं में अन्तर्निहित प्रकृति से उत्पन्न होती है। अतः कहा जाता है कि अग्नि की गर्मी, जल की शीतलता, वायु की शीतलता आदि सब अपने-अपने कारण उत्पन्न हुए हैं; प्रकृति की इन घटनाओं का कोई निर्माता नहीं है –

स्वभावादेव तदुपपत्तेः। तदुक्तम् –

अग्निरुष्णो जलं शीतं समस्पर्शस्तथानिलः।

केनेदं चित्रितं तस्मात्स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः। इति।¹

चार्वाक जो तर्क देते हैं कि कांटे स्वभाव से ही तीखे होते हैं, पहाड़ सुंदर और पत्थर स्वभाव से ही चिकने होते हैं। ऐसा कोई नहीं है जिसने उन्हें ऐसा बनाया हो। यह उनका स्वभाव ही है। इसी प्रकार यह संसार उत्पन्न नहीं होता। किसी भगवान् या किसी दिव्य शक्ति द्वारा वे स्वभाव से अस्तित्व में नहीं आते हैं। अच्छी और बुरी चीजों की उत्पत्ति अपने स्वभाव के अनुसार होती है। मनुष्य का जीवन और मृत्यु भी स्वभाव से ही होती है। स्वभाववादी वर्णन करते हैं कि काँटा तीक्ष्ण होता है, अलग-अलग पक्षी और जानवर अपने-अपने स्वभाव के कारण रंग, रूप, व्यवहार आदि में भिन्न होते हैं।

19.3 प्रतीत्यसमुत्पाद (बौद्ध मत)

प्रतीत्यसमुत्पाद का शाब्दिक अर्थ है- प्रतीत्य(किसी वस्तु के होने पर) समुत्पाद (किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति)। प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धांत कार्य-कारण सिद्धांत पर आधारित है, जो यह प्रमाणित करता है कि प्रत्येक कार्य अपने कारण पर आश्रित है। विश्व की समस्त वस्तुएं कार्य-कारण की एक श्रृंखला हैं। कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो अकारण हो। पेड़-पौधे, मनुष्य, देवता सभी कार्य-कारण के नियम के अधीन हैं। यही 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का सिद्धान्त है, जिसके अनुसार एक के होने पर दूसरे की उत्पत्ति होती है- 'अस्मिन् सति इदं भवति, अस्योत्पादाद् इदम् उत्पद्यते।'²

प्रतीत्यसमुत्पाद के आधार पर गौतम बुद्ध ने यह प्रतिपादित किया कि अविद्या के प्रत्यय से ही संस्कार उत्पन्न होता है। संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान उत्पन्न होता है, विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप, नामरूप से षडायतन, षडायतन से स्पर्श, स्पर्श से वेदना, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से उपादान, उपादान से भव, भव से जाति, जाति से जरामरण उत्पन्न होता है। इसे द्वादश निदान भी कहा जाता है।

इसी प्रकार अविद्या न होने पर संस्कार का निरोध, संस्कार के निरोध से विज्ञान का निरोध, विज्ञान के निरोध से नामरूप का निरोध, नामरूप के निरोध से षडायतन का निरोध, षडायतन के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव का निरोध, भव के निरोध से जाति का निरोध, जाति के निरोध से जरामरण का निरोध हो जाता है। इसी को मध्यमा प्रतिपदा भी कहा गया है।

यः प्रतीत्यसमुत्पादः शून्यतां तां प्रचक्षते।

सा प्रज्ञप्तिरूपादाय प्रतिपत्सैव मध्यमा ॥³

उपर्युक्त में से प्रथम दो निदानों (अविद्या, संस्कार) का सम्बन्ध अतीत जन्म से है, उसके अनन्तर आठ निदानों (विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान एवं भव) का सम्बन्ध वर्तमान जीवन से है। तथा अंतिम दो (जाति, जरामरण) भविष्य जीवन

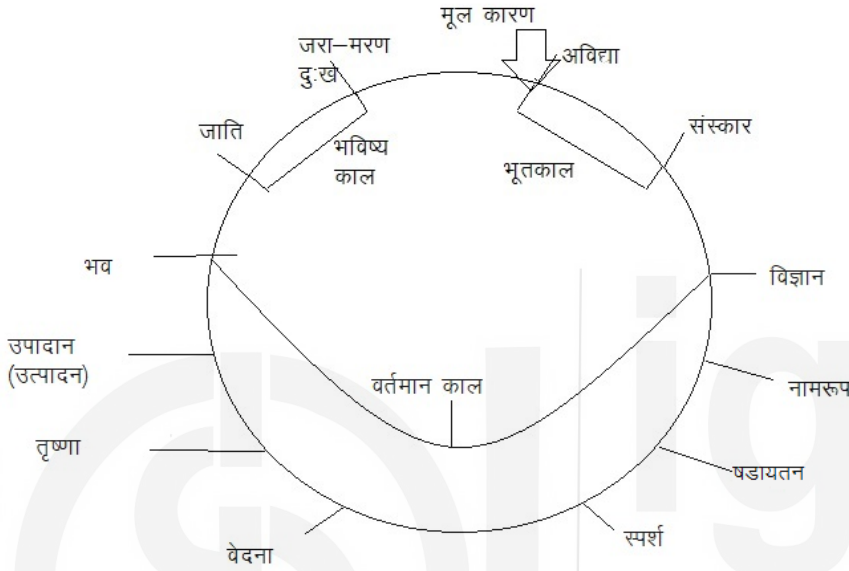
¹ सर्वदर्शनसंग्रह पृ ० 54

² बौद्धदर्शन मीमांसा, बलदेव उपाध्याय, चौखंभा संस्कृत सीरीज, द्वितीय संस्करण, काशी, 1957

³ माण्डूक्यकारिका (24/18)

से सम्बद्ध हैं।

वास्तव में इस प्रकार का कारण-कार्य-सम्बन्धी ज्ञान ही भगवान् के उपदेशों का सार है। प्रतीत्यसमुत्पाद का महत्त्व न केवल स्थविरवादी बौद्धधर्म के लिए ही है अपितु समग्र बौद्ध दर्शन के विकास और बुद्ध के मूल उपदेशों को समझने के लिए अत्यन्तोपयोगी है। शून्यवाद के आचार्य नागार्जुन ने भगवान् बुद्ध को प्रतीत्यसमुत्पाद के उपदेष्टा के रूप में ही स्मरण किया है और प्रतीत्यसमुत्पाद पर ही उन्होंने शून्यवादी दर्शन की स्थापना की है। इसी प्रकार अन्य बौद्ध आचार्यों ने भी प्रतीत्यसमुत्पाद को अपने दर्शनिक चिन्तन में स्थान दिया है।



19.4 सत्कार्यवाद (सांख्य-योग मत)

कार्य की उत्पत्ति से पूर्व कार्य का कारण में अव्यक्त रूप से विद्यमान रहना ही सत्कार्यवाद है। भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं - नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।⁴ अर्थात् असत् का कभी भाव नहीं होता एवं सत् का कभी अभाव नहीं होता है। कार्यकारण के विषय में सांख्य का एक विशिष्ट मत है जो सत्कार्यवाद के नाम से विख्यात है - सतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विकार इत्युदीरितः।⁵

किसी वस्तु का अन्यथाभाव (अन्य रूप में परिवर्तन) दो प्रकार से होता है - परिणाम और विवर्त। परिणाम उसे कहते हैं, जब कोई वस्तु यथार्थतः अपने स्वरूप को छोड़कर दूसरे रूप को प्राप्त हो जाती है, जैसे- दूध अपने स्वरूप को छोड़कर दही के आकार में परिणत हो जाता है। यह दो प्रकार का होता है - 1. प्रकृतिपरिणाम- यह सांख्य का मत है क्योंकि जगत् का आविर्भाव प्रकृति से तत्त्वसहित होता है। 2. ब्रह्मपरिणाम - यह वैष्णव वेदान्तियों का मत है क्योंकि जगत् का आविर्भाव ब्रह्म से तत्त्वसहित होता है।

विवर्त उसे कहते हैं, जब कोई वस्तु अपने स्वरूप का परित्याग किए बिना ही दूसरे रूप में भासित होने लगती है, जैसे- रस्सी अपने स्वरूप को छोड़े बिना ही सर्प के रूप में मिथ्या

⁴ भगवद्गीता 2.16

⁵ वेदान्तसार पृ० 153

ही प्रतीत होने लगती है। यह अद्वैत वेदान्त का सिद्धान्त है जिस पर आगे चर्चा करेंगे।

सत्कार्यवाद के दो रूप होते हैं- (1) परिणामवाद और (2) विवर्तवाद। वस्तु का तत्त्वतः विकार परिवर्तन रूप अथवा परिणाम वहाँ होता है जहाँ कारण से उत्पन्न कार्य वास्तव होता है, जैसे दूध से दही की उत्पत्ति। यहाँ दही वस्तुतः वास्तविक वस्तु है। वह आकार में, रूप में तथा फल में भिन्न होता है। दही जमा हुआ होता है तथा स्वाद में मीठापन लिए होता है, जो दूध के मिठास से भिन्न होता है। अतः कार्य को वास्तविक रूप से बतलाने वाला सिद्धान्त परिणाम कहलाता है और सांख्य का यही मत है।

मार्मिक प्रश्न यह है कि नाना प्रकार की सामग्री तथा प्रयत्न से उत्पन्न होने के पूर्व कार्य कारण में विद्यमान रहता है या नहीं? अर्थात् कुम्भकार दण्ड की सहायता से घड़ा बनाता है, तब क्या उत्पन्न होने से पहले घड़ा मिट्टी में विद्यमान था या नहीं? एवं घड़ा बनाने के लिए कुम्भकार मिट्टी का ही ग्रहण क्यों करता है, बालू अथवा अन्य किसी उपादान का क्यों नहीं?

सांख्य दर्शन का कहना है कि उत्पत्ति से पूर्व कार्य कारण में अवश्यमेव अव्यक्त रूप से विद्यमान रहता है। इस प्रकार कार्य तथा कारण में वस्तुतः अभिन्नता है। कार्य की अव्यक्तावस्था का ही नाम कारण है और कारण की व्यक्तावस्था की संज्ञा कार्य है, अर्थात् कार्य जब तक प्रकट नहीं होता, तब तक वह वस्तु का कारण है, किन्तु जब वह प्रकट हो जाता है तब कार्य कहलाता है। इस प्रकार कार्य-कारण का भेद व्यावहारिक है। कार्य को अपनी उत्पत्ति से पूर्व कारण में विद्यमान (सत्) मानने के कारण इस सिद्धान्त को सत्कार्यवाद कहा जाता है। उत्पत्ति से पूर्व कार्य कारण में सत् था; इस हेतु सांख्यकारिकाकार प्रमाण देते हुए कहते हैं-

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।

शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥⁶

इसकी पुष्टि में सांख्याचार्यों ने निम्नलिखित युक्तियाँ दी हैं :-

1. **असदकरणात्** - इसका अर्थ है - अविद्यमान वस्तु कथमपि उत्पन्न नहीं की जा सकती। यदि कारण में कार्य की सत्ता वस्तुतः नहीं होती, तो कर्ता के कितना भी प्रयत्न करने पर यह कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता। जैसे मिट्टी से दूध या लकड़ी से कपड़ा उत्पन्न नहीं किया जा सकता।
2. **उपादानग्रहणात्** - इसका अर्थ है - किसी वस्तु की उत्पत्ति के लिए केवल विशिष्ट उपादान (वस्तु/पदार्थ) का उपयोग किए जाने से, सत्कार्यवाद सिद्ध होता है। दही चाहने वाला दूध को ही ग्रहण करता है; तन्तुओं से ही कपड़ा बुना जाता है। इन व्यावहारिक दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि कार्य-कारण का सम्बन्ध नियत है। यदि ऐसा न होता तो कोई भी कार्य किसी भी कारण से उत्पन्न होता दिखाई पड़ता। क्या कारण है कि तेल के लिए सरसों या तिलों को ही कोल्हू में पैरा जाता है, क्यों नहीं मिट्टी या कंकड़ को कोल्हू में डालने से तेल निकलता? उत्तर यह है कि कार्य तेल रूप सरसों या

तिल रूप कारण में पहले से ही विद्यमान है। इसीलिए इस कार्य के लिए उसी विशेष उपादान (सामग्री) को हम ग्रहण करते हैं।

3. **सर्वसम्भवाभावात्-** इसका अर्थ है- सबसे सब चीजें पैदा न होने से सत्कार्यवाद सिद्ध होता है। मिट्टी से कपड़ा भी बनता और कम्बल भी तैयार होता, परन्तु ऐसा तो कभी नहीं होता। सब कारणों से सब कार्यों की उत्पत्ति कभी नहीं दिखलाई पड़ती। निश्चित कारणों से ही निश्चित कार्य की उत्पत्ति होती है। जुलाहा कपड़ा तैयार करने के लिए तन्तुओं को ही लेता है, इसका कारण उसे ज्ञात है। वह जानता है कि कारण में किसी विशेष कार्य को पैदा करने की शक्ति है। सब कारणों से सब कार्यों की उत्पत्ति कभी दृष्टिगोचर नहीं होती। यह भी कार्य-कारण के पूर्व स्थित सम्बन्ध का नियामक है।
4. **शक्तस्य शक्यकरणात् -** कारण जिस शक्ति से युक्त है उस पदार्थ को वह पैदा करता है, अन्य को नहीं। इसीलिए तिलहन से तेल निकलता है तथा मिट्टी से घड़ा बनता है, दूसरी कोई चीज नहीं। शक्त (शक्ति-सम्पन्न) कारण से शक्य वस्तु की उत्पत्ति होने से यह कहा जा सकता है कि कारण में कार्य की सत्ता अव्यक्त रूप से अवश्य विद्यमान है।
5. **कारणभावात्-** कार्य तथा कारण की एकता वास्तविक है। वस्तुतः कार्य और कारण एक ही वस्तु की विभिन्न अवस्थाओं के भिन्न नाम हैं - व्यक्त दशा का नाम कार्य है और अव्यक्त दशा का प्रचलित अभिधान कारण है। संसार का प्रतिदिन अनुभव इसी सिद्धान्त को पुष्ट करता है। इन सब प्रमाणों के आधार पर हम इसी सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि कारण व्यापार से पहले भी कारण में कार्य की सत्ता रहती है। इसी कारण सांख्य के मत में न तो किसी वस्तु की उत्पत्ति होती है और न विनाश। कर्ता के व्यापार से वस्तु का आविर्भाव मात्र होता है- अव्यक्त वस्तु व्यक्त रूप में प्रकट हो जाती है। इस प्रकार कार्य की अव्यक्त अवस्था कारण और कारण की व्यक्त अवस्था कार्य कहलाती है।

19.5 असत्कार्यवाद (न्याय-वैशेषिक मत)

असत्कार्यवाद, न्याय-वैशेषिक दर्शन का कार्यकारणवाद सम्बन्धी सिद्धान्त है, जिसके अनुसार कार्य उत्पत्ति के पहले नहीं रहता। न्याय के अनुसार उपादान और निमित्त कारण में अलग-अलग कार्य उत्पन्न करने की पूर्ण शक्ति नहीं है किंतु जब ये कारण मिलकर व्यापारशील होते हैं तब इनकी सम्मिलित शक्ति से ऐसा कार्य उत्पन्न होता है जो इन कारणों से विलक्षण होता है। अतः कार्य सर्वथा नवीन होता है, उत्पत्ति के पहले इसका अस्तित्व नहीं होता। कारण केवल उत्पत्ति में सहायक होते हैं। इनके अनुसार कार्य और कारण स्वभावतः भिन्न होते हैं। कार्य किसी भी रूप में कारण में नहीं रहता। मिट्टी से अधिक बड़े आकार वाला घड़ा मिट्टी में कैसे रह सकता है? और यदि दोनों में कोई एकरूपता है, तो फिर दो अलग-अलग वस्तुएँ मानने की क्या आवश्यकता है? कार्य का कारण में प्रागभाव (उत्पत्ति से पूर्व अभाव) और नष्ट होने पर ध्वंसाभाव (नाश) होता है न कि वह पुनः कारण में विलीन होता है। दधि नष्ट होकर दूध नहीं बनता। यह अवश्य है कि घट मिट्टी से और दधि दूध से ही बनता है किन्तु यह कार्य और कारण (अवयव और अवयवी) के बीच में होने वाले समवाय सम्बन्ध की वजह से होता है।

कार्य की परिभाषा न्यायवैशेषिक दर्शन में की गई है - उत्पत्ति के पूर्व कार्य का भौतिक कारण में जो अभाव रहता है उसे प्रागभाव कहा जाता है; उसका प्रतियोगी कार्य है - कार्य प्रागभावप्रतियोगि।⁷

न्यायवैशेषिक दर्शन के अनुसार जो कार्य की उत्पत्ति से निश्चित पहले रहता हो वह कारण कहलाता है; जैसे मृदा घड़े से पहले रहती है। अतः मृदा घड़े का कारण है - कार्यानियतपूर्ववृत्ति कारणम्।⁸

यह कारण सामान्य रूप से तीन प्रकार का होता है -

1. उपादान कारण -

जिससे वह वस्तु बनी हो, जैसे तन्तु; जिससे वस्त्र बना है। यहाँ तन्तु वस्त्र का उपादान कारण है।

2. निमित्त कारण -

तन्तुओं का संयोग विशेष करने वाला - जुलाहा निमित्त कारण है।

3. साधारण कारण -

तन्तुओं का ओतप्रोत रूप में संयोग विशेष तथा कर्घा आदि साधारण कारण हैं।

कार्य अपने कारण से सर्वथा भिन्न होता है। सत्कार्यवादी सांख्य के अनुसार कारण और कार्य अभिन्न हैं। उदाहरणार्थ तन्तु और पट का तादात्म्य है अर्थात् तन्तु ही पट रूप में परिणत हो जाते हैं। पट, तन्तुओं से भिन्न कोई नवीन वस्तु नहीं है। परन्तु न्याय-वैशेषिक के अनुसार तन्तुओं से उत्पन्न होने वाला पट तन्तुओं से सर्वथा भिन्न है और एक नई वस्तु है। तन्तु और पट दोनों का तत्त्व अलग-अलग है। न्याय-वैशेषिक के अनुसार तन्तु तो पहले के समान पट के उत्पन्न होने पर भी ज्यों के त्यों बने रहते हैं किन्तु तन्तुओं में समवाय सम्बन्ध से रहने वाला 'पट' नामक एक नया द्रव्य उत्पन्न हो जाता है। तन्तु और पट दो भिन्न वस्तु हैं, जिनमें से 'तन्तु' कारण है और 'पट' कार्य, जो उन तन्तुओं में समवाय सम्बन्ध से रहता है। उत्पन्न होने से पूर्व पट अर्थात् कार्य सर्वथा असत् था इसलिए इस सिद्धान्त को 'असत्कार्यवाद' कहते हैं। कार्य की नवीन उत्पत्ति होने से इस सिद्धान्त को 'आरम्भवाद' भी कहते हैं।

समवाय सम्बन्ध - समवाय सम्बन्ध उन दो वस्तुओं में होता है जिन्हें एक-दूसरे से अलग करना संभव नहीं होता। वे अयुतसिद्ध कहलाते हैं और अयुतसिद्धों का सम्बन्ध समवाय होता है।

नित्यसम्बन्धः समवायः। अयुतसिद्धवृत्तिः।

ययोर्द्वयोर्मध्ये एकमविनश्यदपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुतसिद्धौ विज्ञातव्यौ।⁹

समवाय सम्बन्ध के आधार पर यह कारण पुनः दो प्रकार का होता है -

7 तर्कसंग्रह पृ० 123

8 तर्कसंग्रह पृ० 123

9 तर्कसंग्रह पृ० 126

समवायि कारण - यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम् ।¹⁰ अर्थात् जिसमें समवाय सम्बन्ध से कार्य उत्पन्न होता है वह समवायिकारण कहलाता है । जैसे पट के लिए तन्तु ।

असमवायि कारण - कार्येण कारणेन वा एकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति यत्कारणम् तदसमवायिकारणम् ।¹¹ अर्थात् कार्य अथवा कारण के साथ एक अर्थ में समवेत रहने वाला असमवायिकारण होता है । जैसे पट के प्रति तन्तु संयोग व पट-रूप के प्रति तन्तु-रूप । असमवायिकारण सदैव गुण और कर्म होता है जबकि समवायिकारण सदैव द्रव्य होता है ।

इन दोनों से भिन्न चेतन कर्ता और कार्य निर्माण के लिए आवश्यक यन्त्रादि; निमित्त कारण कहलाते हैं ।

न्याय-वैशेषिक के कारणवाद का आधार है- अवयव और अवयवी का सिद्धान्त जिसके अनुसार अवयवी 'पट' तन्तुओं का समूह मात्र नहीं है प्रत्युत तन्तुओं से भिन्न सर्वथा एक नई वस्तु है। न्याय-वैशेषिक के इस सिद्धान्त पर सभी अन्य दार्शनिक सम्प्रदायों ने अर्थात् सांख्य, वेदान्त और बौद्ध ने आक्षेप किया। परन्तु यह स्पष्ट है कि न्याय-वैशेषिक का कारणवाद इस 'अवयव-अवयवी के भेद' सिद्धान्त पर निर्भर है। कारण रूप तन्तु, अवयव हैं जिनमें पट नामक कार्य अवयवी के रूप में होता है और यह अवयवी अपने अवयवों से सर्वथा भिन्न वस्तु है अर्थात् कार्य कारण से सर्वथा भिन्न वस्तु है ।

न्याय-वैशेषिक दर्शन के अनुसार कारण, कार्य के रूप में नहीं बदलता अपितु कारण में एक नई वस्तु उत्पन्न होती है जो कि कारण में समवाय सम्बन्ध से रहती है। इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है तन्तु, पट के रूप में नहीं बदलते अपितु तन्तु स्वयं भी बने रहते हैं और उन तन्तुओं में उनके संयोग के साथ रहने वाली एक नई वस्तु उत्पन्न होती है जिसे पट कहते हैं और पट तन्तुओं में समवाय सम्बन्ध से रहता है। जब यह कहा जाता है कि तन्तुओं से पट उत्पन्न हुआ तो न्याय-वैशेषिक के अनुसार इसका यह अर्थ होता है कि तन्तुओं में पट उत्पन्न हुआ न कि तन्तुओं के द्वारा पट उत्पन्न हुआ। अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता कि तन्तु, पट के रूप में बदल गये; क्योंकि पट के उत्पन्न होने के बाद तन्तु भी विद्यमान हैं। इस प्रकार पट एक नई वस्तु के रूप में उत्पन्न होता है। न्याय-वैशेषिक सिद्धान्त में एक नई वस्तु उत्पन्न होती है जो पहले नहीं थी। इसलिए इस सिद्धान्त को 'आरम्भवाद' (नई वस्तु के उत्पन्न होने का मत) अथवा 'असत्कार्यवाद' (जो सर्वथा नहीं थी उसके उत्पन्न होने का मत) कहते हैं।

यह शंका होती है कि कारण से सर्वथा असत्कार्य की उत्पत्ति मानना उचित नहीं है क्योंकि जिस प्रकार सर्वथा असत् जैसे खरगोश के सींग की उत्पत्ति नहीं हो सकती, उसी प्रकार सर्वथा असत् कार्य की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती । न्याय-वैशेषिक की ओर से इस शंका का समाधान यह है कि नृशृंग और उत्पत्ति से पहले असत् कार्य में असत्त्व की समानता होने पर भी नृशृंग उत्पन्न नहीं हो सकता, क्योंकि वहाँ कारण सामर्थ्य नहीं है । घटादि असत् कार्यों के उत्पादन के लिए कारणों में सामर्थ्य होता है अतः वे उत्पन्न हो जाते हैं। इस समवाय के आधार पर ही न्याय-वैशेषिक में असत्कार्यवाद में साधक समवायिकारण

¹⁰ तर्कसंग्रह पृ० 126

¹¹ तर्कसंग्रह पृ० 126

तथा असमवायिकारण के सम्प्रत्यय माने गए हैं। अतः आरम्भवाद या असत्कार्यवाद का स्पष्टीकरण समवायिकारण तथा असमवायिकारण के स्वरूप को समझने पर सरलता से हो जाता है।

19.6 परिणामवाद एवं विवर्तवाद (वेदान्त मत)

विवर्तवाद अद्वैत वेदान्त का कार्यकारण सिद्धान्त है। विवर्त को जानने से पहले हमें परिणाम को जानना आवश्यक है -

सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदीरितः ।

अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदीरितः ॥¹²

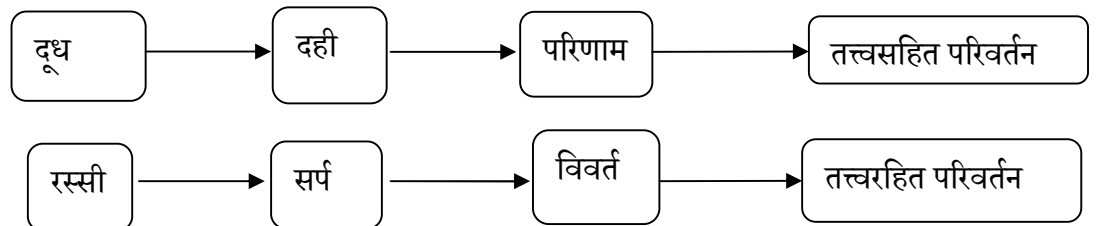
(किसी वस्तु का) तत्त्वसहित अन्यरूप में परिवर्तित होना 'विकार' कहा गया है और (किसी वस्तु का) तत्त्वरहित अन्यरूप में परिवर्तित होना 'विवर्त' कहा गया है।

किसी वस्तु का अन्यथाभाव (अन्य रूप में परिवर्तन) दो प्रकार से होता है - परिणामभाव और विवर्तभाव। परिणामभाव उसे कहते हैं, जब कोई वस्तु यथार्थतः अपने स्वरूप को छोड़कर दूसरे रूप को प्राप्त हो जाती है, जैसे दूध अपने स्वरूप को छोड़कर दही के आकार में परिणत हो जाता है। और विवर्तभाव उसे कहते हैं, जब कोई वस्तु अपने स्वरूप का परित्याग किए बिना ही दूसरे रूप में अथार्थ रूप से भासित होने लगती है, जैसे रस्सी अपने स्वरूप को छोड़े बिना ही सर्प के रूप में मिथ्या ही प्रतीत होने लगती है। अद्वैतवेदान्त में जगत् को ब्रह्म का परिणाम नहीं माना जाता है, क्योंकि परिणामभाव मानने से ब्रह्म भी दुग्धादि के समान विकारी सिद्ध होगा और विकारी होने से उसमें अनित्यता आदि अनेक दोष उत्पन्न हो जायेंगे। परन्तु विवर्तभाव को अंगीकार करने से ये दोष नहीं होंगे क्योंकि अज्ञानादि प्रपञ्च का भान मिथ्या होने से ब्रह्म अविकारी ही बना रहेगा।

विद्यारण्यस्वामी ने भी परिणाम (Modification) और विवर्त (Manifestation) की व्याख्या की है -

अवस्थान्तरतापत्तिरेकस्य परिणामिता स्यात् क्षीरं दधि मृत्कुम्भः सुवर्णं कुण्डलं यथा अवस्थान्तरभानं तु विवर्तो रज्जुसर्पवत् ।¹³

अर्थात् किसी वस्तु का अपनी पूर्वावस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था को प्राप्त कर लेना उस वस्तु का परिणाम है, जैसे दूध का दही बन जाना, मिट्टी का घड़ा बन जाना और सुवर्ण का कुण्डल बन जाना। परन्तु पूर्वावस्था का परित्याग किए बिना ही दूसरी अवस्था का भासित होना उस वस्तु का विवर्त है, जैसे रज्जु का रज्जुरूप में रहने पर भी सर्परूप में भासित होना।



¹² वेदान्तसार पृ० 99

¹³ पंचदशी, पृ० 156

अद्वैत वेदान्त के सिद्धांत के अनुसार यह समस्त आकाशादि प्रपञ्च ब्रह्म की मायाशक्ति से भासित होने वाला ब्रह्म का विवर्त है। विवर्त का अर्थ है – अपने स्वरूप का परित्याग किए बिना ही अपने से भिन्न रूप प्रदर्शित करना। जैसे रज्जु के विवर्त सर्प की रज्जु से पृथक् अपनी कोई सत्ता नहीं होती है; रज्जु, रज्जु रूप से ही सत् होती है, उसी प्रकार ब्रह्म का विवर्त होने से जगत् की ब्रह्म से पृथक् कोई सत्ता नहीं है, ब्रह्मरूप से ही सत्ता है। यह जगत् रज्जुसर्प के समान मिथ्या है। जिस प्रकार रज्जु में अज्ञान के कारण भासित होने वाले सर्प के चेतन या अचेतन, शुद्ध या अशुद्ध, और नित्य या अनित्य होने का प्रश्न नहीं उठता है, उसी प्रकार ब्रह्म में अज्ञान के कारण भासित होने वाले जगत् के विषय में ये विकल्प नहीं उठ सकते हैं। अज्ञानजन्य होने के कारण जगत् की प्रतीति अज्ञानसमकालिक है अर्थात् जब तक अज्ञान है, तभी तक यह भासता (प्रतीत) है।

ब्रह्म; जीव, जगत् आदि के रूप में माया शक्ति के कारण विवर्तित (अभिव्यक्त) होता है। यह माया क्या है? इसे भी समझना आवश्यक है।

माया –

निर्गुण ब्रह्म से सविशेष जगत् की अभिव्यक्ति क्यों होती है? एक ब्रह्म से नानात्मक जगत् की सृष्टि कैसे हुई? इस प्रश्न उत्तर है - 'माया'। शंकराचार्य ने माया तथा अविद्या शब्दों का प्रयोग समानार्थक रूप में किया है, परन्तु परवर्ती दार्शनिकों ने इन दोनों शब्दों में सूक्ष्म अर्थ-भेद की कल्पना की है। अविद्यात्मिका बीजशक्ति 'अव्यक्त' कही जाती है। यह परमेश्वर में आश्रित होने वाली महासुप्तिरूपिणी है, जिसमें अपने स्वरूप को न जानने वाले संसारी जीव शयन किया करते हैं – अविद्यात्मिका हि बीजशक्तिरव्यक्तपदनिर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी महासुप्तिः यस्यां स्वरूपबोधरहिताः शेरते संसारिणो जीवाः।¹⁴

माया ब्रह्म की शक्ति है। त्रिगुणात्मिका माया ज्ञान-विरोधी भावरूप पदार्थ है –

अनादि भावरूपं यद्विज्ञानेन विलीयते ।

तदज्ञानमिति प्राज्ञा लक्षणं संप्रचक्षते ॥¹⁵

भावरूप कहने का अभिप्राय यह है कि वह अभावरूपा नहीं है। माया न तो सत् है, न असत्। इन दोनों से विलक्षण होने के कारण उसे 'अनिर्वचनीय' कहा गया है। जो पदार्थ सद्रूप से वर्णित न किया जा सके, उसकी शास्त्रीय संज्ञा 'अनिर्वचनीय' है। जगत् के पदार्थों का रूप दो प्रकार का होता है- सत् या असत्। 'सत्' उसे कहते हैं जो सर्वदा एक ही प्रकार का हो और किसी ज्ञान से भी उसका विरोध न हो, अर्थात् 'बाध' न हो। निर्बाध वस्तु सत् होती है, परन्तु यदि अन्य ज्ञान के द्वारा पूर्व वस्तु बाधित हो जाती है, तो उसे 'असत्' कहना पड़ता है। माया के विषय में ये दोनों प्रकार असंगत हैं। माया को 'सत्' कैसे माना जाए? ब्रह्म का ज्ञान होने पर माया का ज्ञान बाधित हो जाता है। यदि माया 'सत्' होती, तो वह कभी बाधित नहीं होती और उसकी प्रतीति सर्वदा होती रहती, परन्तु ऐसा

¹⁴ ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, 1/4/3

¹⁵ तत्त्वप्रदीपिका 1.9

न होने से वह 'सत्' नहीं कही जा सकती। तो माया 'असत्' कही जाए, यह भी पक्ष ठीक नहीं क्योंकि असत् पदार्थ की कभी प्रतीति नहीं होती, परन्तु माया की प्रतीति तो हमें अवश्यमेव होती है। अतः उसे 'असत्' भी नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार 'माया' में बाध एवं प्रतीति दोनों प्रकार के विरुद्ध धर्मों के कारण उसे अनिर्वचनीय कहा जाता है :-

अज्ञानं तु - सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपम् ।¹⁶

माया की दो शक्तियाँ-आवरण एवं विक्षेप :- माया की दो शक्तियाँ होती हैं। आवरण तथा विक्षेप। इन्हीं की सहायता से वस्तुभूत ब्रह्म के वास्तव रूप को ढक कर उसमें अवस्तु रूप जगत् की प्रकृति का उदय होता है।

1.आवरणशक्ति - आवरण शक्ति ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को मानो ढक लेती है- **सच्चिदानन्दस्वरूपमावृणोतीत्यावरणशक्तिः ।¹⁷** अर्थात् चूँकि यह शक्ति आत्मा के सत्, चित् और आनन्दस्वरूप को आवृत्त कर लेती है, इसलिए इसको आवरण शक्ति कहते हैं। यहाँ शंका है कि क्या अपरिमित आत्मा को अज्ञान की आवरणशक्ति से आवृत्त किया जाता है। आवरण शक्ति ज्ञाता की बुद्धि का आवरण करती है। ज्ञाता की बुद्धि का आवरण कर देने से ही ब्रह्म के सत्, चित् एवं आनन्द स्वरूप का अनुभव ज्ञाता को नहीं हो पाता है। अज्ञान वस्तुतः आत्मा का आवरण नहीं कर सकता है, वह केवल प्रमाता की बुद्धि को ढकता है, परन्तु लगता यह है, मानों उसने आत्मा को ही ढक लिया हो। अतः अज्ञान को आत्मा का आच्छादक उपचार से कहा जाता है। जिस प्रकार एक छोटा-सा मेघ दर्शकों के नेत्रों को ढक देने के कारण अनेक योजन-विस्तृत आदित्यमण्डल को ढकता मालूम होता है; उसी प्रकार परिच्छिन्न अज्ञान अनुभवकर्ताओं की बुद्धि को ढक देने के कारण अपरिच्छिन्न असंसारी आत्मा को आच्छादित-सा कर देता है। इसी शक्ति की संज्ञा 'आवरण' है, जो शरीर के भीतर द्रष्टा और दृश्य के तथा शरीर के बाहर ब्रह्म और सृष्टि के भेद को ढक देती है - **आवरण-शक्तिस्तावदल्पोऽपि मेघोऽनेकयोजनायत- मादित्यमण्डलमवलोकयितूनयन पथपिधायकतया यथाच्छादयतीय तथाज्ञानं परिच्छिन्नमसांसारिणमवलोकयित् बुद्धिपिधायकतयाच्छादयतीव तादृशं सामर्थ्यम् ।¹⁸**

2. विक्षेपशक्ति - विक्षेप शक्ति उस ब्रह्म में आकाशादि प्रपंच को उत्पन्न कर देती है - **'ब्रह्मादीस्थावरान्तं जगत् जलबुद्बुद्बुद् नामरूपात्मकं विक्षेपति सृजतिती विक्षेपशक्तिः ।¹⁹** अर्थात् चूँकि ब्रह्मा से लेकर स्थावर प्राणियों तक समस्त नामरूपात्मक जगत् की, जल में बुलबुलों की भाँति, सृष्टि कर देती है, इसलिए यह विक्षेपशक्ति कहलाती है। जिस प्रकार रज्जु का अज्ञान रज्जु में अपनी शक्ति से साँप को उत्पन्न करता है, ठीक उसी प्रकार माया भी अज्ञानाच्छादित आत्मा में शक्ति के बल पर आकाशादि जगत् प्रपंच को उत्पन्न करती है। इस शक्ति का अभिधान 'विक्षेप' है - **विक्षेपशक्तिस्तु यथा रज्ज्वज्ञानं स्वावृतरज्जौ स्वशक्त्या सर्पादिकमुद्गावयति, एवमज्ञानमपि स्वावृतात्मनि विक्षेपशक्त्या आकाशादि-**

¹⁶ वेदान्तसार पृ० 56

¹⁷ सुबोधिनी पृ० 78

¹⁸ वेदान्तसार पृ० 78

¹⁹ सुबोधिनी पृ 115

‘आवरण’ का अर्थ है असली स्वरूप पर पर्दा डाल देना तथा ‘विक्षेप’ का तात्पर्य है उस पर दूसरी वस्तु का आरोप कर देना। इन दोनों शक्तियों के बल पर माया भी ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति करती है। एक बात विचारणीय है। जिस प्रकार जादू के खेल में जादू का प्रभाव दर्शकों पर पड़ता है, स्वयं जादूगर के ऊपर नहीं। वह तो अपने जादू के रहस्य को जानता है कि वह दूसरों को भ्रम में डालने के लिए है। वह इससे अछूता बचा रहता है। माया में भी यही बात होती है। ब्रह्म के लिए माया केवल एक इच्छामात्र है। वह इससे प्रभावित नहीं होता। वस्तु का कार्य के रूप में वास्तविक परिवर्तन नहीं मानने के कारण यह सिद्धान्त विवर्तवाद कहलाता है।

बोध/अभ्यास प्रश्न -

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

1. प्रतीत्यसमुत्पाद का सम्बन्ध किस दर्शन से है -

(क) सांख्य से	(ख) चार्वाक से
(ग) बौद्ध से	(घ) वेदान्त से
2. तन्तु कारण है -

(क) समवायि	(ख) असमवायि
(ग) उपादान	(घ) निमित्त
3. चार्वाक का सिद्धांत है -

(क) सत्कार्यवाद	(ख) असत्कार्यवाद
(ग) विवर्तवाद	(घ) स्वभाववाद
4. माया नहीं है -

(क) अनिर्वचनीया	(ख) त्रिगुणात्मिका
(ग) सादि	(घ) भावरूपा

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1.प्रागभावप्रतियोगि ।
2. कार्यनियतपूर्ववृत्ति ।
3. शक्तस्य शक्यकरणात् सत्कार्यम् ।
4. सतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा इत्युदीरितः ।

III. अधोलिखित वाक्यों में सही के सामने (✓) और गलत के सामने (×) का चिन्ह लगाएँ-

1. अविद्या के प्रत्यय से ही संस्कार उत्पन्न होता है। ()
2. अन्यथाभाव (अन्य रूप में परिवर्तन) तीन प्रकार से होता है। ()
3. तन्तुओं का ओतप्रोत रूप में संयोग – विशेष तथा कर्घा आदि साधारण कारण हैं। ()
4. समवायिकारण सदैव गुण होता है। ()

IV. अभ्यास प्रश्न -

1. कार्यकारणवाद किसे कहते हैं? भारतीय दर्शन के कार्यकारणवाद के सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।
2. स्वभाववाद एवं प्रतीत्यसमुत्पाद में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. सत्कार्यवाद की सिद्धि हेतु दिए गए तर्कों की समीक्षा कीजिए।
4. असत्कार्यवाद क्या है? समवायिकारण एवं असमवायिकारण में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. माया की द्विविध शक्तियों का वर्णन करते हुए विवर्तवाद पर प्रकाश डालिए।

19.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने भारतीय दर्शन में कार्यकारणवाद का अध्ययन किया। प्रत्येक दर्शन अपनी तत्त्वमीमांसा के विवेचन के अंतर्गत कारणवाद के सिद्धान्त की स्थापना करता है। उसके द्वारा मान्य तत्त्वों के स्वरूप के आधार पर कारणवाद का स्वरूप आश्रित होता है। जगत् के मूल तत्त्व की खोज के अंतर्गत दर्शन इस संसार में दिखाई देने वाले कार्य-कारण-सम्बन्ध की मीमांसा करते हैं और उसके आधार पर जगत् के मूल कारण का स्वरूप निश्चित करते हैं। 'सतः सज्जायते' सत् से सत् की उत्पत्ति (आविर्भाव) होती है यह सांख्य का सिद्धान्त है। 'असतः सज्जायते' असत् से सत् की उत्पत्ति होती है, यह बौद्ध दर्शन का सिद्धान्त है। 'एकस्य सतो विवर्तः कार्यजातं न वस्तु सत्' यह समस्त कार्य एक सत् वस्तु का विवर्त है; वास्तविक नहीं, यह वेदान्तियों का सिद्धान्त है। 'सतोऽसज्जायते' सत् से असत् की उत्पत्ति होती है, यह नैयायिक और वैशेषिकों का सिद्धान्त है। इस प्रकार भारतीय दर्शन के मुख्य कार्यकारण सिद्धान्तों का प्रस्तुत इकाई में हमने पर्यावलोकन किया।

19.8 शब्दावली

कार्य	- उत्पत्ति के पूर्व कार्य का भौतिक कारण में जो अभाव रहता है उसे प्रागभाव कहा जाता है उसका प्रतियोगी कार्य है - कार्य प्रागभावप्रतियोगि।
कारण	- न्याय-वैशेषिक दर्शन के अनुसार जो कार्य के निश्चित रूप से पहले रहता हो वह कारण कहलाता है; जैसे मृदा घड़े से पहले रहती है अतः मृदा घड़े का कारण है - कार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम्।
आरम्भवाद	- कार्य- पट सर्वथा एक नई वस्तु के रूप में उत्पन्न होता है। पट अपने कारण तन्तु से सर्वथा भिन्न है इसीलिए न्याय-वैशेषिक

दर्शन के कार्यकारण सिद्धान्त को 'आरम्भवाद' भी कहते हैं।

- समवाय - समवाय सम्बन्ध उन दो वस्तुओं में होता है जिन्हें एक-दूसरे से अलग करना संभव नहीं होता। वे अयुतसिद्ध कहलाती हैं और अयुतसिद्धों का सम्बन्ध समवाय होता है।
- परिणाम - किसी वस्तु का अपनी पूर्वावस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था को प्राप्त कर लेना उस वस्तु का परिणाम है, जैसे दूध का दही बन जाना, मिट्टी का घड़ा बन जाना और सुवर्ण का कुण्डल बन जाना।
- विवर्त - पूर्वावस्था का परित्याग किए बिना ही दूसरी अवस्था का भासित होना उस वस्तु का विवर्त है, जैसे रज्जु का रज्जुरूप में रहने पर भी सर्परूप में भासित होना।
- अनिर्वचनीय - माया न तो सत् है, न असत्। इन दोनों से विलक्षण होने के कारण उसे 'अनिर्वचनीय' कहा गया है। जो पदार्थ सद्रूप से वर्णित न किया जा सके उसकी शास्त्रीय संज्ञा 'अनिर्वचनीय' है।
- आवरण - अज्ञान की वह शक्ति जो ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को मानो ढक लेती है।
- विक्षेप - अज्ञान की वह शक्ति जो ब्रह्म में आकाशादि प्रपञ्च को उत्पन्न कर देती है।

19.9 उपयोगी पुस्तकें

- भारतीय दर्शन, चन्द्रधर शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2008
- बौद्धदर्शन मीमांसा, बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, काशी, द्वितीय संस्करण, 1957
- माण्डूक्यकारिका, अखण्डानन्द सरस्वती, सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, मुम्बई, 2015
- सर्वदर्शनसंग्रह, उमाशंकर शर्मा, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2014
- सांख्यकारिका, राकेश शास्त्री, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2012
- वेदान्तसार (सुबोधिनी टीका सहित), आद्याप्रसाद मिश्र, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999
- तर्कसंग्रह, दयानन्द भार्गव, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2001

19.10 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. (ग) बौद्ध से 2. (क) समवायि 3. (घ) स्वभाववाद 4. (ग) सादि

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1. कार्य 2. कारणम् 3. कारणभावाच्च 4. विकार

III. अधोलिखित वाक्यों में सही के सामने (√) और गलत के सामने (×) का चिन्ह लगाइए -

1. (√) 2. (×) 3. (√) 4. (×)

IV. अभ्यास प्रश्न -

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

